The Chitransh Academic & Research
An International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume1 | Issue 5 | December 2025
ISSN: 3049-303X (Online)
Website: www.thechitranshacadmic.in

सांख्यदर्शन में कैवल्य का स्वरूप

डॉ॰ ऋषिका वर्मा

सहायक आचार्य, दर्शन विभाग, हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल, विश्वविद्यालय, उत्तराखण्ड-246174

लेख विवरण

शोधपत्र

प्राप्ति तिथि: 12/11/2025
स्वीकृति तिथि: 20/12/2025
प्रकाशनतिथि: 31/12/2025

मुख्य शब्द: कैवल्य, दुःख, पुरूष एवं प्रकृति, त्रिगुण।

सारांश

मोक्ष या कैवल्य का अभिप्राय बन्धन से मुक्त होना है। किन्तु यथार्थ में पुरुष का तो मोक्ष होता ही नहीं क्योंकि वह स्वभावतः सर्वथा निर्मुक्त है। पुरुष अज एवं नित्य है। चिन्मात्र उसका स्वरूप है, गुण अथवा धर्म नहीं। त्रिगुणातीत होने से वह स्वरूपतः दुःखों से विरहित, असंभिन्न है। त्रिविध दुःखों का उसमें नितान्त अभाव है। पुष्कर पत्रवत् वह राग-द्वेष-मोह-लोभ-क्रोध इत्यादि समस्त विकारों से रहित, निर्लिप्त है। वह कारण रहित अपरिणामी, निर्विकारी, कूटस्थ, निरवयव असंहत, विवेकी, स्वतन्त्र, अलिंग, अविषय, असामान्य, विभु एवं व्यापक है। देश-काल-कारण सभी बन्धनों से पुरुष विहीन है। प्रकृति की परिधि से वह अपरिच्छिन्न, विनिर्मुक्त है। वह निष्क्रिय एवं अकर्ता है। वह असंग, उदासीन, मध्यस्थ, साक्षी, द्रष्टा, चेतन मात्र है।

प्रस्तावनाः

सांख्यसिद्धान्त द्वैतवादी है। मुख्य रूप से प्रकृति तथा पुरुष दो ही मौलिक तत्त्व इसको अभिमत हैं। दोनों ही अनादि नित्य कारण रहित एवं स्वतन्त्र हैं। प्रकृति अचेतन तथा पुरुष चेतन है। प्रकृति एक तथा पुरुष अनेक हैं। यह प्रकृति त्रिगुणात्मिका सत्त्वरजस्तमो रूपा सततपरिणामिनी तथा प्रसवधर्मिणी है। किंतु पुरुष त्रिगुणातीत, **सुखदुःखमोहरहित अपरिणामी निष्क्रिय अकत्रा निर्विकारी पुष्करपत्रवत्** निर्लिप्त असंग उदासीन अविचल कूटस्थ नित्य शुबुद्धमुक्त स्वभाव वाला साक्षी, द्रष्टा एवं चिन्मात्र है। इसी पुरुष के साथ **संयोग को प्राप्त कर अचेतन**, पर परिणामिनी प्रकृति महत्तत्त्व, अहंकार, तन्मात्र ज्ञम **से समस्त सृष्टि की अभिव्यक्ति करती है। पंगु एवं अंधे के सदृश इन दोनों का संयोग होता हैं पर इस संयोग में हेतु अनादि अविद्या ही है। अतः अविद्या ही सकल अनर्थों का कारण है। जब तक** अज्ञान की स्थिति है तब तक संसार की स्थिति बनी रहती है। प्रकृति-पुरुष के परस्पर विभेद को न जानने के **कारण इस दुःखमय जगत् की सत्ता है। स्वरूपतः निष्क्रिय अकर्ता होने पर भी पुरुष अनेक प्रकारके** शुभाशुभ कर्मों का करने वाला बनता है। सुखदुःख से रहित होने पर भी विविध प्रकार के फलों का **भोक्ता बनता है। नित्य शुद्ध बुद्ध यही पुरुष रागद्वेष इत्यादि भावनाओं से कुलषित तथा अज्ञानी हो जाता है। स्वभावतः नित्य मुक्त होने पर भी जन्ममृत्यु के चक्र में संसारण करता है और अपने को बँधा हुआ** अनुभव करता है। आचार्य शंकर ने भी मिथ्याज्ञान को इस लोकव्यवहार का कारण बतलाया है।1 श्रीमद्भगवद्गीता में भी इसी तथ्य की पृष्टि की गई है और अहंकार, अज्ञान को ही पुरुष के बन्धन का कारण बतलाया गया है।2 **अतः इस अनर्थकारी अज्ञान का निराकरण अत्यन्त आवश्यक है। विशुद्ध ज्ञान** की उपलब्धि होते ही दुःख की आत्यन्तिक एवं ऐकान्तिक निवृत्ति हो जाती है और यही सांख्य का लक्ष्य भी है। इसी तात्पर्य को बताते हुए व्यासस्मृति में कहा गया है- शुद्धात्मतत्त्वविज्ञानं सांख्यमित्यभिधीयते।

अतः अज्ञान के कारण प्रकृति के साथ जो पुरुष का तादात्म्य, अभेद प्रतीति है, मानो वही पुरुष का **बन्धन है। विवेकख्याति द्वारा इसी मिथ्या प्रतीति का निराकरण होता है। स्वरूप दर्शन होते ही प्रकृति से** भिन्न पुरुष अपने यथार्थ स्वरूप को प्राप्त कर लेता है। व्यक्त-अव्यक्त-ज्ञ के विज्ञान से ही **निःशेषदुःखनिवृत्ति रूप एवं स्वरूप प्रतिष्ठारूप कैवल्य की सिद्धि होती है और इसी का प्रतिपादन** सांख्यदर्शन का प्रमुख प्रयोजन है।5 **सांख्य के समान तन्त्र योगदर्शन में भी अपवर्ग का यही स्वरूप है।** यम-नियम-**आसन आदि अष्टांग योग की सतत साधन से सत्त्वपुरुषान्यताख्याति की प्राप्ति होने से पुरुष** का सम्बन्ध प्रकृति से समाप्त हो **जाता है। पुरुषार्थ संपन्न कर लेने से प्रतिकूल परिणाम द्वारा गुण अपनेकारण में विलीन हो जाते हैं और पुरुष अपने चिन्मात्र स्वरूप में स्थित हो जाता है। चित्ति शक्ति की यह स्वरूप प्रतिष्ठा ही कैवल्य है।**6

फिर भी स्वरूपतः अबद्ध, **मुक्त होते हुये भी पुरुष अपने को बँधा हुआ मानता है। अनादि अविद्या के कारण द्रष्टा अविषय चेतन पुरुष दृश्या भोग्या विषयरूपा अचेतन प्रकृति के साथ सम्बन्ध प्राप्त कर तद्गत**

Crossponding author: rishikaverma@hnbgu.ac.in

समस्त धर्मों को अपने में उपचरित करके बन्धनगत होता है, जन्ममृत्यु के चक्र में आता है तथा प्रकृतिप्रदत्त विषयों का उपभोग करता है एवं इस प्रकार सुखदुःख इत्यादि का अनुभव करता है। यद्यपि सुखदुःख इत्यादि बुद्धि के धर्म हैं, तथापि उसमें प्रतिबिम्बित होता हुआ निष्केवल पुरुष बुद्धिगत सभी भावों को अपने लिये मान लेता है तथा स्वरूपतः असंग होने पर भी उनसे ससक्त होकर 'अहं वृत्ति' से अभिमान करता हुआ उन भावनाओं का उपभोक्ता बन जाता है।7 जैसे स्वच्छ स्फटिक जपाकुसुम के सांनिध्या से स्वयं भी उपरंजित हो जाता है, वैसे ही पुरुष भी बुद्धि में रहने वाले सुखदुःखमोह इत्यादि भावों का अनुभव करता है। प्रकृति के ही विकार स्वरूप महत्तत्त्व-अहंकार-एकादश इन्द्रिय-पंचतन्मात्र रूप अष्टादश तत्त्वनिर्मित सूक्ष्म, लिंग शरीर का ही संसरण होता है। परन्तु अविद्या के कारण पुरुष इस सूक्ष्म शरीर के साथ तादात्म्य स्थापित कर स्वयं भी संसरण करता है और विविध प्रकार के विषयों का उपभोग करता है तथा बन्धन का अनुभव करता है। इस प्रकार पुरुष के लिए भी बन्धन, संसरण एवं मोक्ष कहा जाता है। किन्तु स्वरूपतः वह अबद्ध, समस्त बन्धनों से पृथक् ही है।

पुरुष के भोग एवं अपवर्ग द्विविध प्रयोजनों को सम्पन्न करने वाली प्रकृति है।8 अतः प्रकृति की प्रवृत्ति पुरुष के प्रति तभी तक रहती है, जब तक विवेकख्याति की प्राप्ति नहीं हो जाती। विवेक-साक्षात्कार,, स्वरूपदर्शन होते ही प्ररकृति के व्यापार की उपरति हो जाती है। पुरुष के लिये प्रकृति पुनः विषयोपभोगों को प्रस्तुत नहीं करती और पुरुष भी प्रकृतिगत विषयों को तुच्छ समझकर परित्याग कर देता है तथा आसक्तिरहित उदासीन हो जाता है।9 विवेक संपन्न पुरुष के प्रति प्रकृति निवृत्तप्रसवा हो जाती है। धर्म-अधर्म-अज्ञान-वैराग्य-अवैराग्य-ऐश्वर्य नामक उसके सप्त भावों की समाप्ति हो जाती है। पुरुष सुखदुःख मोह, रागद्वेषमोह इत्यादि सभी भावों से रहित हो जाता है तथा अपने ही केवली चिन्मात्र स्वरूप में प्रतिष्ठित होकर असंग उदासीन द्रष्टा की भांति प्रसवरहित प्रकृति को अपने से पृथक् देखता है।10

इस विवेकख्याति के उत्पन्न होते ही अर्जित बीज सदृश धर्माधर्म इत्यादि भाव कारण रूप नहीं रह जाते। इनका फलोत्पादकत्व विनष्ट हो जाता है। क्लेश रूपी सलिल से सिक्त हुई बुद्धि रूपी भूमि में ही कर्म रूपी बीज अंकुरित होते हैं तथा निदाघ रूप विवेकज्ञान से सलिलरूप क्लेश का पूर्णतः शोषण कर लिये जाने पर शुष्क बुद्धि रूपी भूमि में कर्मबीज अंकुरित होने में असमर्थ रहते हैं। अतः ज्ञान से समस्त संचित कर्म का सर्वथा अभाव हो जाता है और वे कर्म जाति, आयु एवं भोग रूपी विपाक को उत्पन्न करने में असमर्थ हो जाते हैं। इस प्रकार बुद्धि में संचित कार्मों के फल की प्राप्ति नहीं होती तथा 'अहं वृत्ति' से रहित हाकर कार्य करने से भावी बन्धन के कारण बनने वाले कर्म संस्कारों की भी प्राप्ति नहीं होती। केवल प्रारब्ध कर्मों का ही सम्बन्ध पुरुष के साथ रह जाता है, जिनके फल स्वरूप उसे वर्तमान कालीन जाति-आयु-भोग की प्राप्ति हुई है। इन कर्मों का क्षय तो फल उपभोग द्वारा ही संभव है। अतः इन कर्मों के अभाव से समस्त प्रारब्ध कर्मों का सक्षय नहीं हो जाता। जिस प्रकार कुलाल का चक्र पूर्व उत्पन्न वेग के कारण तब तक गतिशील रहता है, जब तक वेग समाप्त नहीं हो जाता। किन्तु वेग के क्षीण

Crossponding author: rishikaverma@hnbgu.ac.in

होते ही चक्र की गति स्वयं रूक जाती है। उसी प्रकार प्रारब्ध कर्मों के फल भोग पर्यन्त पुरुष देह को धारण करता ही है, अनासक्तभाव से वह कर्मों का संपादन करता ही है।11

निष्कर्षः

पुरुष की यही जीवन्मुक्त अवस्था है।12 यद्यपि उसमें सुख दुःख इत्यादि का अभाव है। तथापि उसके साथ शरीर का बन्धन बना हुआ है। अवशिष्ट प्रारब्ध कर्मों का भोग से क्षय होते ही पुरुष का शरीर भी अपनी अपना व्यापार स्थगित कर देता है। देह संपात के साथ ही पुरुष समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है। इस प्रकार पुरुष में त्रिविध दुःखों का ऐकान्तिक एवं आत्यन्तिक अभाव हो जाता है। दुःखों से विमुक्त पुरुष अपने चिन्मात्र स्वरूप में प्रतिष्ठित हो जाता है। यही पुरुष ही विदेहमुक्ति, कैवल्य, अपवर्ग है।13

सन्दर्भ

1. मिथ्याज्ञाननिमित्तः सत्यानृते मिथुनीकृत्य अहमिदं ममेदमिति नैसर्गिकोऽयं लोकव्यवहारः। ब्रह्मसूत्र शांकरभाष्य, उपोद्घात।
2. प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणः कर्माणि सर्वशः। अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।। श्रीमद्भगवद्गीता, 3/27।
3. तस्मान्न बध्यतेऽद्धा न मुच्यते नाऽपि संसरति कश्चित्। संसरति बध्यते मुच्यते च नानाश्रया प्रकृतिः।। सां0 का0 62
4. एवं तत्त्वाभ्यासान्नऽस्मि न मे नाऽहमित्यपरिशेषम्। अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम्।। सां0 का0 64
5. यद्वा तद्वा तदुच्छित्तिः पुरुषार्थः। सां0 सू0 6/70
6. सत्त्वपुरुषयोः सुद्धिसाम्ये कैवल्यम्। योगसूत्र 3/55 एवं पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवःकैवल्यं। स्वरूपप्रतिष्ठा वा चिति शक्तेरिति।। योगसूत्र 4/33
7. पुरुषस्तु सुखाद्यननुषंगी चेतनः। सोऽयं बुद्धितत्त्ववर्तिनाज्ञानसुखादिना तत्प्रतिबिम्बितस्तच्छयातत्त्या ज्ञानसुखादिमानिव भवति। सा0 त0 कौ0 5 की व्याख्या। एवं तस्मात् प्रतिबिम्बरूपेण पुरुषे दुःखसम्बन्धो भोगाख्योऽस्ति। सां0 सू0 1/1 प्रवचनभाष्य
8. पुरुषविमोक्षनिमित्तं तथा प्रवृत्तिः प्रधानस्य। सां0 का0 57 एवं पुरुषस्य विमोक्षार्थं प्रवर्तते तद्वदव्यक्तम्। सां0 का0 58
9. द्रष्टा मयेत्युपेक्षक एको द्रष्टाऽहमित्युपरमत्यन्या। सति संयोगेऽपि तयोः प्रयोजनं नास्ति सर्गस्य।। सां0 का0 66

Crossponding author: rishikaverma@hnbgu.ac.in

10. तेन निवृत्तप्रसवामर्थवशात् सप्तरूपविनिवृत्ताम्। प्रकृतिं पश्यति पुरुषः प्रेक्षकवदवस्थितः स्वच्छः।। सां0 का0 65
11. सम्यग्ज्ञानाधिगमाद् धर्मादीनामकारणप्राप्तौ। तिष्ठति संस्कारवशात् चक्रभ्रमिवद्धृतशरीरः।। सां0 का0 67 एवं चक्रभ्रमणवद् धृतशरीरः। सां0 सू0 3/82
12. क्लेशकर्मनिवृत्तौ जीवन्नेव विद्वान् विमुक्तौ भवति। व्यासभाष्य 4/30।
13. प्राप्ते शरीरभेदे चरितार्थत्वात् प्रधानविनिवृत्तौ। ऐकान्तिकमात्यन्तिकमुभयं कैवल्यमाप्नोति।। सां0 का0 68

Crossponding author: rishikaverma@hnbgu.ac.in